[2019] 3 उम. नि. प. 206

नरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

बनाम

बिहार राज्य और अन्य

[2019 की दांडिक अपील सं. 211]

4 फरवरी, 2019

न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी और न्यायमूर्ति एस. अब्दुल नजीर

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 193 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 195 और 340] – न्यायिक कार्यवाही में मिथ्या साक्ष्य दिया जाना – न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा प्राइवेट परिवाद पर संज्ञान लिया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अपास्त किया जाना – किसी न्यायालय द्वारा दंड संहिता की धारा 193 में वर्णित दंडनीय अपराध का संज्ञान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(ख)(i) और धारा 340 में विहित प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए केवल उस न्यायालय में लिखित परिवाद पर ही लिया जा सकता है जिसकी कार्यवाही में या जिसके संबंध में ऐसा अपराध किया गया है और प्राइवेट परिवाद के आधार पर ऐसा संज्ञान नहीं लिया जा सकता है ।

अपील के तथ्यों के अनुसार, प्रत्यर्थी सं. 2 से 4 दूरदर्शन और ऑल इंडिया रेडियो के पदधारी हैं । अपीलार्थी ने दूरदर्शन केन्द्र, मोतीहारी में इंजीनियर सहायक के पद पर 1400-2600/- रुपए के वेतनमान में कार्य ग्रहण किया था । यह दलील दी गई थी कि सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा अपने तारीख 15 मई, 1995 के विनिश्चय द्वारा 1 जनवरी, 1986 से इंजीनियर सहायकों का वेतनमान 2,000/- रुपए से 3000/- रुपए पुनरीक्षित किया गया था । वरिष्ठ इंजीनियर सहायक का वेतनमान 1 जनवरी, 1986 से 2,000/- रुपए से 3,275/- रुपए पुनरीक्षित किया गया था । उसका यह पक्षकथन है कि 1 जनवरी, 1996 से सभी प्रवर्गों का प्रतिस्थापन वेतनमान 6,500/- रुपए से 10,500/- रुपए नियत किया गया था । संबंधित काडर की ईम्पलाइज एसोसिएशन ने सुनिश्चित कैरियर प्रगति स्कीम (एसीपी) प्रवृत्त होने पर 8,000-13,500/- रुपए के

वेतनमान में प्रथम एसीपी देने के लिए अभ्यावेदन दिया था, जिसे मंजूर नहीं किया गया था और इसके परिणामस्वरूप केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, पटना पीठ के समक्ष एक आवेदन फाइल किया गया था । इससे 2002 का मूल आवेदन सं. 514 उद्भूत हुआ । केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा उक्त मूल आवेदन तारीख 7 सितम्बर, 2009 के आदेश द्वारा मंजूर किया गया था । भारत संघ ने उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका फाइल करके उक्त आदेश को चुनौती दी । उच्च न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति करते हुए रिट याचिका मंजूर की कि एसीपी प्रदान करने के लिए कोई सामान्यीकृत निदेश नहीं दिया जा सकता है और एसीपी व्यक्तिगत आधार पर प्रदान की जानी चाहिए । तत्पश्चात्, अपीलार्थी ने प्रथम एसीपी प्रदान करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष अभ्यावेदन दिया । इनकार करने पर उसने केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष 2009 का मूल आवेदन सं. 173 फाइल किया, जिसे तारीख 13 फरवरी, 2013 को खारिज कर दिया गया । उसके पश्चात्, अपीलार्थी ने 2014 की रिट याचिका सीडब्ल्यूजेसी सं. 2797 फाइल करके उच्च न्यायालय में समावेदन किया, जिसका तारीख 29 जून, 2014 के आदेश द्वारा उसमें के प्रत्यर्थियों को यह निदेश देते हुए निपटारा किया गया कि अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए अभ्यावेदन पर समुचित आदेश पारित किया जाए । उक्त आदेश की अननुपालना का अभिकथन करते हुए अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक अवमान याचिका फाइल की, जिससे 2015 का एमजेसी सं. 2912 उद्भूत हुई । अवमान का अभिकथन करने वाली याचिका में प्रत्यर्थियों ने तारीख 29 जून, 2014 के आदेश का अनुपालन दर्शित करते हुए एक कारण बताओ शपथपत्र फाइल किया और, तद्नुसार, अवमान मामला अपीलार्थी को यह स्वतंत्रता देते हुए बंद कर दिया गया कि वह न्यायालय के निदेश की अनुपालना में पारित किए गए आदेश को समुचित न्यायालय के समक्ष चुनौती दे सकेगा । अपीलार्थी ने उक्त आदेश को चुनौती देने के बजाय, प्रत्यर्थी सं. 2 से 4 के विरुद्ध सहायक मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-VII, मोतीहारी के समक्ष भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 193 के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने का अभिकथन करते हुए एक प्राइवेट परिवाद फाइल किया, जिसमें यह अभिकथन किया गया कि प्रत्यर्थियों द्वारा अपने कारण बताओ शपथपत्र में किए गए मिथ्या और

गलत कथन के कारण उच्च न्यायालय ने अवमान मामला बंद कर दिया था । मजिस्ट्रेट ने तारीख 22 दिसम्बर, 2016 के आदेश द्वारा परिवाद पर संज्ञान किया और प्रत्यर्थी सं. 2 से 4 को समन किया । प्रत्यर्थी सं. 2 से 4 द्वारा उक्त आदेश को उच्च न्यायालय में दांडिक पुनरीक्षण याचिका फाइल करके चुनौती दी गई । उच्च न्यायालय द्वारा दांडिक पुनरीक्षण याचिका मंजूर की गई । अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के आदेश को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 195 की उपधारा (1)(ख) से यह स्पष्ट है कि यह धारा दो अलग-अलग अपराधों के संबंध में है : (i) भारतीय दंड संहिता की धाराओं 193 से 196 (जिनके अंतर्गत ये दोनों धाराएं भी हैं), 199, 200, 205 से 211 और 228 के अधीन दंडनीय कोई अपराध, जब ऐसे अपराध के बारे में यह अभिकथित है कि वह किसी न्यायालय में की कार्यवाही में या उसके संबंध में किया गया है, [धारा 195(1)(ख)(i)] (ii) भारतीय दंड संहिता की धारा 463 में वर्णित या धारा 471, धारा 475 या धारा 476 के अधीन दंडनीय कोई अपराध, जब ऐसे अपराध के बारे में यह अभिकथित है कि वह किसी न्यायालय में की कार्यवाही में पेश की गई साक्ष्य में दी गई किसी दस्तावेज के बारे में किया गया है । [धारा 195(1)(ख)(ii)] । इन धाराओं का अनुशीलन करने पर आसानी से यह देखा जा सकता है कि धारा 195(1)(ख)(i) और धारा 195(1)(ख)(ii) के अधीन आने वाले अपराध स्पष्ट रूप से भिन्न हैं । अपराधों के प्रथम प्रवर्ग में मिथ्या साक्ष्य देने के अपराधों और लोक न्याय के विरुद्ध अपराधों को निर्दिष्ट किया गया है, जबकि अपराधों का दूसरा प्रवर्ग किसी न्यायालय की कार्यवाही में पेश किए गए दस्तावेज या दिए गए साक्ष्य की बाबत अपराधों के संबंध में है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 में उस न्यायालय द्वारा अनुसरण किया जाने वाला नियम अधिकथित किया गया है, जिसे इस धारा में विनिर्दिष्ट अपराध का संज्ञान लेना है, किंतु उस न्यायालय के मार्गदर्शन के लिए कोई दिशा-निर्देश अंतर्विष्ट नहीं है जो उस अपराध की बाबत अभियोजन आरंभ करना चाहता है जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह पूर्वकथित न्यायालय में की कार्यवाही में या उसके संबंध में किया

गया है । इस प्रयोजन के लिए, धारा 340 को देखना चाहिए, जिसमें विधि के अधीन कार्यवाही करने के लिए इच्छुक न्यायालय से या तो स्वप्रेरणा से या इस निमित्त उसे किए गए आवेदन पर परिवाद फाइल करने की अपेक्षा की गई है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 में यह स्पष्ट किया गया है कि इस धारा के अधीन अभियोजन केवल उस न्यायालय की मंजूरी से आरंभ किया जा सकता है जिसकी कार्यवाहियों के अधीन धारा 195(1)(ख) में निर्दिष्ट अपराध अभिकथित रूप से कारित किया गया है । इस धारा का उद्देश्य यह अभिनिश्चित करना है कि क्या न्यायालय में पेश की गई या साक्ष्य में दी गई किसी दस्तावेज के संबंध में न्याय प्रशासन पर प्रभाव डालने वाला कोई अपराध उस समय के दौरान किया गया था जब वह दस्तावेज या साक्ष्य विधि अभिरक्षा में था और क्या न्याय के हित में यह भी समीचीन है कि ऐसी कार्रवाई की जाए । न्यायालय न केवल प्रथमदृष्ट्या मामले पर विचार करेगा अपितु इस बात पर भी विचार करेगा कि क्या दांडिक कार्यवाही संस्थित किया जाना लोक हित में है या लोक हित के विरुद्ध है । प्रस्तुत मामला पूरी तरह से उन मामलों के प्रवर्ग में आता है जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(ख)(i) के अंतर्गत आते हैं क्योंकि यह अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अधीन दंडनीय है । अतः, मजिस्ट्रेट ने प्राइवेट परिवाद के आधार पर अपराध का संज्ञान लेकर गलती की है । न्यायालय के मत में, उच्च न्यायालय ने ठीक ही मजिस्ट्रेट के आदेश को अपास्त किया है । (पैरा 12, 13, 14, 16 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2000]	(2000) 1 एस. सी. सी. 278 : **एम. एस. अहलावत** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य** ;	8, 19
[1998]	(1998) 2 एस. सी. सी. 493 : **सच्चिदानंद सिंह और एक अन्य** बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य** ;	7, 21, 22

[1973] [1973] 3 उम. नि. प. 588 =
(1973) 2 एस. सी. सी. 406 :
संतोख सिंह बनाम **इजहार हुसैन और एक अन्य** ; 18

[1971] [1971] 2 उम. नि. प. 715 =
(1971) 1 एस. सी. सी. 774 :
छज्जू राम बनाम **राधे श्याम** । 17

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2019 की दांडिक अपील सं. 211.

2017 की दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 111 में पटना उच्च न्यायालय के तारीख 30 मार्च, 2017 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अश्विनी भारद्वाज

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री अभिनव मुकर्जी, (सुश्री) बिहु शर्मा, (सुश्री) पुर्णिमा कृष्णा, विक्रांत यादव, संतोष पॉल और एम. सी. धींगड़ा ।

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एस. अब्दुल नजीर ने दिया ।

न्या. नजीर – हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

2. यह अपील 2017 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 111 में तारीख 30 मार्च, 2017 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा पटना उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 2 से 4 द्वारा फाइल की गई पुनरीक्षण याचिका मंजूर की और विद्वान् सहायक मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-VII, मोतीहारी ने अपीलार्थी द्वारा फाइल एक प्राइवेट परिवाद के आधार पर भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'भारतीय दंड संहिता') की धारा 193 के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान लेते हुए, तारीख 22 दिसम्बर, 2016 को पारित किए गए आदेश को अपास्त कर दिया ।

3. प्रत्यर्थी सं. 2 से 4 दूरदर्शन और ऑल इंडिया रेडियो के पदधारी हैं । अपीलार्थी ने दूरदर्शन केन्द्र, मोतीहारी में इंजीनियर सहायक के पद पर 1400-2600/- रुपए के वेतनमान में कार्य ग्रहण किया था । यह

दलील दी गई थी कि सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा अपने तारीख 15 मई, 1995 के विनिश्चय द्वारा 1 जनवरी, 1986 से इंजीनियर सहायकों का वेतनमान 2,000/- रुपए से 3,000/- रुपए पुनरीक्षित किया गया था । वरिष्ठ इंजीनियर सहायक का वेतनमान 1 जनवरी, 1986 से 2,000/- रुपए से 3,275/- रुपए पुनरीक्षित किया गया था । उसका यह पक्षकथन है कि 1 जनवरी, 1996 से सभी प्रवर्गों का प्रतिस्थापन वेतनमान 6,500/- रुपए से 10,500/- रुपए नियत किया गया था । संबंधित काडर की ईम्पलाइज एसोसिएशन ने सुनिश्चित कैरियर प्रगति स्कीम (एसीपी) प्रवृत्त होने पर 8,000-13,500/- रुपए के वेतनमान में प्रथम एसीपी देने के लिए अभ्यावेदन दिया था, जिसे मंजूर नहीं किया गया था और इसके परिणामस्वरूप केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, पटना पीठ के समक्ष एक आवेदन फाइल किया गया था । इससे 2002 का मूल आवेदन सं. 514 उद्भूत हुआ । केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा उक्त मूल आवेदन तारीख 7 सितम्बर, 2009 के आदेश द्वारा मंजूर किया गया था ।

4. भारत संघ ने उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका फाइल करके उक्त आदेश को चुनौती दी । उच्च न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति करते हुए रिट याचिका मंजूर की कि एसीपी प्रदान करने के लिए कोई सामान्यीकृत निदेश नहीं दिया जा सकता है और एसीपी व्यक्तिगत आधार पर प्रदान की जानी चाहिए । तत्पश्चात्, अपीलार्थी ने प्रथम एसीपी प्रदान करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष अभ्यावेदन दिया । इनकार करने पर उसने केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष 2009 का मूल आवेदन सं. 173 फाइल किया, जिसे तारीख 13 फरवरी, 2013 को खारिज कर दिया गया । उसके पश्चात्, अपीलार्थी ने 2014 की रिट याचिका सीडब्ल्यूजेसी सं. 2797 फाइल करके उच्च न्यायालय में समावेदन किया, जिसका तारीख 29 जून, 2014 के आदेश द्वारा उसमें के प्रत्यर्थियों को यह निदेश देते हुए निपटारा किया गया कि अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए अभ्यावेदन पर समुचित आदेश पारित किया जाए । उक्त आदेश की अननुपालन का अभिकथन करते हुए अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक अवमान याचिका फाइल की, जिससे

2015 का एमजेसी सं. 2912 उद्धृत हुई ।

5. अवमान का अभिकथन करने वाली याचिका में प्रत्यर्थियों ने तारीख 29 जून, 2014 के आदेश का अनुपालन दर्शित करते हुए एक कारण बताओ शपथपत्र फाइल किया और, तद्नुसार, अवमान मामला अपीलार्थी को यह स्वतंत्रता देते हुए बंद कर दिया गया कि वह न्यायालय के निदेश की अनुपालना में पारित किए गए आदेश को समुचित न्यायालय के समक्ष चुनौती दे सकेगा । अपीलार्थी ने उक्त आदेश को चुनौती देने के बजाय, प्रत्यर्थी सं. 2 से 4 के विरुद्ध सहायक मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-VII, मोतीहारी के समक्ष भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 193 के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने का अभिकथन करते हुए एक प्राइवेट परिवाद फाइल किया, जिसमें यह अभिकथन किया गया कि प्रत्यर्थियों द्वारा अपने कारण बताओ शपथपत्र में किए गए मिथ्या और गलत कथन के कारण उच्च न्यायालय ने अवमान मामला बंद कर दिया था । मजिस्ट्रेट ने तारीख 22 दिसम्बर, 2016 के आदेश द्वारा परिवाद पर संज्ञान किया और प्रत्यर्थी सं. 2 से 4 को समन किया ।

6. प्रत्यर्थी सं. 2 से 4 ने उक्त आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उच्च न्यायालय ने तारीख, 30 मार्च, 2017 के अपने आदेश द्वारा दांडिक पुनरीक्षण याचिका मंजूर की ।

7. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अवमान याचिका में प्रत्यर्थियों ने न्यायालय के बाहर तैयार किए गए/कूटरचित मिथ्या शपथपत्र फाइल किए थे । मिथ्या शपथपत्रों के आधार पर उच्च न्यायालय ने अवमान मामला बंद कर दिया था । इसलिए, अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी सं. 2 से 4 के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अधीन मजिस्ट्रेट के समक्ष एक परिवाद फाइल किया था । यह तर्क दिया गया कि भारतीय दंड सहिता की धारा 193 के अधीन प्राइवेट परिवाद फाइल करने के लिए पूर्व मंजूरी अभिप्राप्त करना आज्ञापक नहीं था और अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया परिवाद कायम रखने योग्य था । उन्होंने इस संबंध में

सच्चिदानंद सिंह और एक अन्य बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया ।

8. दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि न्यायिक कार्यवाहियों में मिथ्या साक्ष्य देने के अपराध के लिए दंड भारतीय दंड संहिता की धारा 193 में अनुबंधित है और ऐसे अपराध का संज्ञान करने के लिए शासित करने वाली विधि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 में अंतर्विष्ट है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 में किसी न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अधीन दंडनीय अपराध का तब तक संज्ञान करने के लिए स्पष्ट रूप से वर्णित किया गया है, जब तक कि यह ऐसे न्यायालय के, या न्यायालय के ऐसे अधिकारी के, जिसे वह न्यायालय इस निमित्त लिखित रूप में प्राधिकृत करे, उस न्यायालय की न्यायिक कार्यवाही के संबंध में, जिसके संबंध में उस अपराध का किया जाना अभिकथित है, लिखित परिवाद के आधार पर न हो । चूंकि ऐसा कोई परिवाद नहीं किया गया था, इसलिए उच्च न्यायालय ने मजिस्ट्रेट के आदेश को अभिखंडित करके न्यायोचित किया है । इस संबंध में **एम. एस. अहलावत** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया गया है ।

9. दी गई दलीलों को ध्यान में रखते हुए, विचार करने के लिए प्रश्न यह है कि क्या मजिस्ट्रेट ने प्राइवेट परिवाद के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान करके न्यायोचित किया है ?

10. आगे अग्रसर होने से पूर्व, भारतीय दंड संहिता और दंड प्रक्रिया संहिता के सुसंगत उपबंधों का परिशीलन करना महत्वपूर्ण है । भारतीय दंड संहिता की धारा 193 निम्नलिखित है :–

> "**193. मिथ्या साक्ष्य के लिए दंड** – जो कोई साशय किसी न्यायिक कार्यवाही के किसी प्रक्रम में साक्ष्य देगा या किसी

---

[1] (1998) 2 एस. सी. सी. 493.

[2] (2000) 1 एस. सी. सी. 278.

न्यायिक कार्यवाही के किसी प्रक्रम पर उपयोग में लाए जाने के प्रयोजन से मिथ्या साक्ष्य गढ़ेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी दंडित किया जाएगा, और जुर्माने से भी, दंडनीय होगा ;

और जो कोई किसी अन्य मामले में साशय मिथ्या साक्ष्य देगा या गढ़ेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा, और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

स्पष्टीकरण 1 – सेना न्यायालय के समक्ष विचारणीय न्यायिक कार्यवाही है ।

स्पष्टीकरण 2 – न्यायालय के समक्ष कार्यवाही प्रारंभ होने के पूर्व, जो विधि द्वारा निर्दिष्ट अन्वेषण होता है वह न्यायिक कार्यवाही का एक प्रक्रम है, चाहे वह अन्वेषण किसी न्यायालय के सामने न भी हो ।

दृष्टांत

यह अभिनिश्चय करने के प्रयोजन से कि क्या **य** को विचारण के लिए सुपुर्द किया जाना चाहिए, मजिस्ट्रेट के समक्ष जांच में **क** शपथ पर कथन करता है, जिसका वह मिथ्या होना जानता है । यह जांच न्यायिक कार्यवाही का एक प्रक्रम है, इसलिए **क ने** मिथ्या साक्ष्य दिया है ।

स्पष्टीकरण 3 – न्यायालय द्वारा विधि के अनुसार निर्दिष्ट और न्यायालय के प्राधिकार के अधीन संचालित अन्वेषण न्यायिक कार्यवाही का एक प्रक्रम है, चाहे वह अन्वेषण किसी न्यायालय के सामने न भी हो ।

दृष्टांत

संबंधित स्थान पर जाकर भूमि की सीमाओं को अभिनिश्चित करने के लिए न्यायालय द्वारा प्रतिनियुक्त आफिसर के समक्ष जांच में **क** शपथ पर कथन करता है जिसका मिथ्या होना वह जानता है । यह जांच न्यायिक कार्यवाही का एक प्रक्रम है, इसलिए

क ने मिथ्या साक्ष्य दिया है ।"

11. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 में अभिव्यक्त रूप से निम्नलिखित उल्लिखित है :–

"**195. लोक न्याय के विरुद्ध अपराधों के लिए और साक्ष्य में दिए गए दस्तावेजों से संबंधित अपराधों के लिए लोक सेवकों के विधिपूर्ण प्राधिकार के अवमान के लिए अभियोजन** – (1) कोई न्यायालय, –

(क)(i) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 172 से धारा 188 तक की धाराओं के (जिनके अंतर्गत ये दोनों धाराएं भी हैं) अधीन दंडनीय किसी अपराध का, अथवा

(ii) ऐसे अपराध के किसी दुष्प्रेरण या ऐसा अपराध करने के प्रयत्न का, अथवा

(iii) ऐसा अपराध करने के लिए किसी आपराधिक षड्यंत्र का,

संज्ञान संबद्ध लोक सेवक के, या किसी अन्य ऐसे लोक सेवक के, जिसके वह प्रशासनिक तौर पर अधीनस्थ है, लिखित परिवाद पर ही करेगा, अन्यथा नहीं ;

(ख) (i) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की निम्नलिखित धाराओं अर्थात् 193 से 196 (जिनके अंतर्गत ये दोनों धाराएं भी हैं), 199, 200, 205 से 211 (जिनके अंतर्गत ये दोनों धाराएं भी हैं) और 228 में से किन्हीं के अधीन दंडनीय किसी अपराध का, जब ऐसे अपराध के बारे में यह अभिकथित है कि वह किसी न्यायालय में की कार्यवाही में या उसके संबंध में किया गया है ; अथवा

(ii) उसी संहिता की धारा 463 में वर्णित या धारा 471, धारा 475 या धारा 476 के अधीन दंडनीय अपराध का, जब ऐसे अपराध के बारे में यह अभिकथित है कि वह किसी न्यायालय में की कार्यवाही में पेश की गई साक्ष्य में दी गई किसी दस्तावेज के बारे में किया गया है ; अथवा

(iii) उपखंड (i) या उपखंड (ii) में विनिर्दिष्ट किसी अपराध को करने के लिए आपराधिक षड्यंत्र या उसे करने के प्रयत्न या उसके दुष्प्रेरण के अपराध का,

संज्ञान ऐसे न्यायालय के, या न्यायालय के ऐसे अधिकारी के, जिसे वह न्यायालय इस निमित्त लिखित रूप में प्राधिकृत करे या किसी अन्य न्यायालय के, जिसके वह न्यायालय अधीनस्थ है लिखित परिवाद पर ही करेगा अन्यथा नहीं ।

(2) जहां किसी लोक सेवक द्वारा उपधारा (1) के खंड (क) के अधीन कोई परिवाद किया गया है वहां ऐसा कोई प्राधिकारी, जिसके वह प्रशासनिक तौर पर अधीनस्थ है, उस परिवाद को वापस लेने का आदेश दे सकता है और ऐसे आदेश की प्रति न्यायालय को भेजेगा ; और न्यायालय द्वारा उसकी प्राप्ति पर उस परिवाद के संबंध में आगे कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी :

परंतु ऐसे वापस लेने का कोई आदेश उस दशा में नहीं दिया जाएगा जिसमें विचारण प्रथम बार के न्यायालय में समाप्त हो चुका है ।

(3) उपधारा (1) के खंड (ख) में "न्यायालय" शब्द से कोई सिविल, राजस्व या दंड न्यायालय अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत किसी केन्द्रीय, प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन गठित कोई अधिकरण भी है यदि वह उस अधिनियम द्वारा इस धारा के प्रयोजनार्थ न्यायालय घोषित किया गया है ।

(4) उपधारा (1) के खंड (ख) के प्रयोजनों के लिए कोई न्यायालय उस न्यायालय के जिसमें ऐसे पूर्वकथित न्यायालय की अपीलनीय डिक्रियों या दंडादेशों की साधारणतया अपील हाती है, अधीनस्थ समझा जाएगा या ऐसा सिविल न्यायालय, जिसकी डिक्रियों की साधारणतया कोई अपील नहीं होती है, उस मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता वाले प्रधान न्यायालय के अधीनस्थ समझा जाएगा जिसकी स्थानीय अधिकारिता के अंदर ऐसा सिविल न्यायालय स्थित है :

परंतु –

(क) जहां अपीलें एक से अधिक न्यायालय में होती हैं और अवर अधिकारिता वाला अपील न्यायालय वह न्यायालय होगा जिसके अधीनस्थ ऐसा न्यायालय समझा जाएगा ;

(ख) जहां अपीलें सिविल न्यायालय में और राजस्व न्यायालय में भी होती हैं वहां ऐसा न्यायालय उस मामले या कार्यवाही के स्वरूप के अनुसार, जिसके संबंध में उस अपराध का किया जाना अभिकथित है, सिविल या राजस्व न्यायालय के अधीनस्थ समझा जाएगा ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

12. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 की उपधारा (1)(ख) से यह स्पष्ट है कि यह धारा दो अलग-अलग अपराधों के संबंध में है :–

(i) भारतीय दंड संहिता की धाराओं 193 से 196 (जिनके अंतर्गत ये दोनों धाराएं भी हैं), 199, 200, 205 से 211 (जिनके अंतर्गत ये दोनों धाराएं भी हैं) और 228 के अधीन दंडनीय कोई अपराध, जब ऐसे अपराध के बारे में यह अभिकथित है कि वह किसी न्यायालय में की कार्यवाही में या उसके संबंध में किया गया है, [धारा 195(1)(ख)(i)]

(ii) भारतीय दंड संहिता की धारा 463 में वर्णित या धारा 471, धारा 475 या धारा 476 के अधीन दंडनीय कोई अपराध, जब ऐसे अपराध के बारे में यह अभिकथित है कि वह किसी न्यायालय में की कार्यवाही में पेश की गई साक्ष्य में दी गई किसी दस्तावेज के बारे में किया गया है । [धारा 195(1)(ख)(ii)]

13. इन धाराओं का अनुशीलन करने पर आसानी से यह देखा जा सकता है कि धारा 195(1)(ख)(i) और धारा 195(1)(ख)(ii) के अधीन आने वाले अपराध स्पष्ट रूप से भिन्न हैं । अपराधों के प्रथम प्रवर्ग में मिथ्या साक्ष्य देने के अपराधों और लोक न्याय के विरुद्ध अपराधों को निर्दिष्ट किया गया है, जबकि अपराधों का दूसरा प्रवर्ग किसी न्यायालय की कार्यवाही में पेश किए गए दस्तावेज या दिए गए साक्ष्य की बाबत

अपराधों के संबंध में है ।

14. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 में उस न्यायालय द्वारा अनुसरण किया जाने वाला नियम अधिकथित किया गया है, जिसे इस धारा में विनिर्दिष्ट अपराध का संज्ञान लेना है, किंतु उस न्यायालय के मार्गदर्शन के लिए कोई दिशा-निर्देश अंतर्विष्ट नहीं है जो उस अपराध की बाबत अभियोजन आरंभ करना चाहता है जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह पूर्वकथित न्यायालय में की कार्यवाही में या उसके संबंध में किया गया है । इस प्रयोजन के लिए, धारा 340 को देखना चाहिए, जिसमें विधि के अधीन कार्यवाही करने के लिए इच्छुक न्यायालय से या तो स्वप्रेरणा से या इस निमित्त उसे किए गए आवेदन पर परिवाद फाइल करने की अपेक्षा की गई है ।

15. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 निम्नलिखित रूप में है :–

"**340. धारा 195 में वर्णित मामलों में प्रक्रिया –** (1) जब किसी न्यायालय की, उससे इस निमित्त किए गए आवेदन पर या अन्यथा, यह राय है कि न्याय के हित में यह समीचीन है कि धारा 195 की उपधारा (1) के खंड (ख) में निर्दिष्ट किसी अपराध की, जो उसे, यथास्थिति, उस न्यायालय की कार्यवाही में या उसके संबंध में अथवा उस न्यायालय की कार्यवाही में पेश की गई या साक्ष्य में दी गई दस्तावेज के बारे में किया हुआ प्रतीत होता है, जांच की जानी चाहिए तब ऐसा न्यायालय ऐसी प्रारंभिक जांच के पश्चात् यदि कोई हो, जैसी वह आवश्यक समझे, –

(क) उस भाव का निष्कर्ष अभिलिखित कर सकता है ;

(ख) उसका लिखित परिवाद कर सकता है ;

(ग) उसे अधिकारिता रखने वाले प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट को भेज सकता है ;

(घ) ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त के हाजिर होने के लिए पर्याप्त प्रतिभूति ले सकता है अथवा यदि अभिकथित अपराध अजमानतीय है और न्यायालय ऐसा करना आवश्यक समझता है तो, अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास अभिरक्षा

में भेज सकता है ; और

(ङ) ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष हाजिर होने और साक्ष्य देने के लिए किसी व्यक्ति को आबद्ध कर सकता है ।

(2) किसी अपराध के बारे में न्यायालय को उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग, ऐसे मामले में जिसमें उस न्यायालय ने उपधारा (1) के अधीन उस अपराध के बारे में न तो परिवाद किया है और न ऐसे परिवाद के किए जाने के लिए आवेदन को नामंजूर किया है, उस न्यायालय द्वारा किया जा सकता है जिसके ऐसा पूर्वकथित न्यायालय धारा 195 की उपधारा (4) के अर्थ में अधीनस्थ है ।

(3) इस धारा के अधीन किए गए परिवाद पर हस्ताक्षर, –

(क) जहां परिवाद करने वाला न्यायालय उच्च न्यायालय है वहां उस न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा किए जाएंगे, जिसे वह न्यायालय नियुक्त करे ;

(ख) किसी अन्य मामले में, न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा या न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा, जिसे न्यायालय इस निमित्त लिखित में प्राधिकृत करे, किए जाएंगे ।

(4) इस धारा में "न्यायालय" का वही अर्थ है जो धारा 195 में है ।"

16. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 में यह स्पष्ट किया गया है कि इस धारा के अधीन अभियोजन केवल उस न्यायालय की मंजूरी से आरंभ किया जा सकता है जिसकी कार्यवाहियों के अधीन धारा 195(1)(ख) में निर्दिष्ट अपराध अभिकथित रूप से कारित किया गया है । इस धारा का उद्देश्य यह अभिनिश्चित करना है कि क्या न्यायालय में पेश की गई या साक्ष्य में दी गई किसी दस्तावेज के संबंध में न्याय प्रशासन पर प्रभाव डालने वाला कोई अपराध उस समय के दौरान किया गया था जब वह दस्तावेज या साक्ष्य विधि अभिरक्षा में था और क्या

न्याय के हित में यह भी समीचीन है कि ऐसी कार्रवाई की जाए । न्यायालय न केवल प्रथमदृष्ट्या मामले पर विचार करेगा अपितु इस बात पर भी विचार करेगा कि क्या दांडिक कार्यवाही संस्थित किया जाना लोक हित में है या लोक हित के विरुद्ध है ।

17. **छज्जू राम** बनाम **राधे श्याम**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 195 के अधीन अभियोजन केवल न्यायालय की मंजूरी से आरंभ किया जा सकता है और केवल यदि यह जानबूझकर और भानपूर्वक प्रतीत होता हो । न्यायालय ने जोरदार रूप से यह अभिनिर्धारित किया :–

> "शपथभंग के लिए अभियोजन की मंजूरी न्यायालयों द्वारा केवल उन्हीं मामलों में दी जानी चाहिए जहां ऐसा प्रतीत होता हो कि शपथभंग जानबूझकर और सतर्कता से किया गया है और दोषसिद्धि युक्तियुक्त रूप से अधिसंभाव्य (प्राबेबुल) या सम्भाव्य (लाइकली) है । निस्संदेह मिथ्या साक्ष्य देना और मिथ्या शपथ-पत्र फाइल करना ऐसी बुरी बात है जिसकी कठोरता के साथ रोकथाम करनी चाहिए किन्तु शपथभंग के लिए बहुत शीघ्रता से और जल्दबाजी में बिना सम्यक् सतर्कता और सावधानी के और अनंतिम और संदेहपूर्ण सामग्री के आधार पर अभियोजन आरंभ करने से उसका प्रयोजन ही विफल हो जाता है । अभियोजन के लिए आदेश तभी दिया जाना चाहिए जब न्याय के हित में अपचारी को दंडित करना समीचीन समझा जाए और यह केवल इस कारण से नहीं किया जाना चाहिए कि कथन में कोई ऐसी अशुद्धता है जो अहानिकर या महत्वहीन हो । किसी सारवान् बात के बारे में कोई ऐसा जानबूझकर मिथ्या कथन होना चाहिए जिससे प्रथमदृष्ट्या मामला बनता हो और न्यायालय का यह समाधान होना चाहिए कि आरोप के लिए युक्तियुक्त आधार है .....।"

18. **संतोख सिंह** बनाम **इजहार हुसैन और एक अन्य**[2] वाले मामले

---

[1] [1971] 2 उम. नि. प. 715 = (1971) 1 एस. सी. सी. 774.

[2] [1973] 3 उम. नि. प. 588 = (1973) 2 एस. सी. सी. 406.

में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय हर एक गलत या मिथ्या कथन पर अभियोजन का आदेश करने के लिए आबद्ध नहीं है । न्यायालय जब समीचीनता के प्रश्न का अवधारण करता है तो उस समय उसे सभी सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग करना होता है । न्यायालय न्याय प्रशासन के बृहत्तर हित में अभियोजन चलाने का आदेश देता है न कि व्यक्तिगत बदले या प्रतिशोध की भावनाओं की तृप्ति के लिए या प्राइवेट पक्षकार के उद्देश्य की पूर्ति के लिए । ऐसे अपराधों के लिए बहुधा अभियोजन चलाने का आदेश देने से इसका उद्देश्य ही विफल हो जाएगा । जानबूझकर मिथ्यावादिता के ऐसे सुस्पष्ट मामलों में ही न्यायालय को अभियोजन आरंभ करने का निदेश देना चाहिए जहां दोषसिद्ध की अत्यधिक संभावना है ।

19. **एम. एस. अहलावत** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसे अपराध के संबंध में, जिसके बारे में यह कथित है कि वह भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अधीन कारित किया गया है, प्राइवेट परिवाद पूर्णत: वर्जित है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 के अधीन विहित प्रक्रिया आज्ञापक है । यह अभिनिर्धारित किया गया कि :–

> "5. भारतीय दंड संहिता का अध्याय-11 'मिथ्या साक्ष्य और लोक न्याय के विरुद्ध अपराधों' के संबंध में है और इसमें आने वाली धारा 193 में किसी न्यायिक कार्यवाही में मिथ्या साक्ष्य देने या मिथ्या साक्ष्य गढ़ने के लिए दंड का उपबंध किया गया है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 में यह उपबंधित है जहां कोई कृत्य लोक सेवकों के विधिपूर्ण प्राधिकार के अवमान के अपराध या भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अधीन मिथ्या साक्ष्य देने आदि जैसे लोक न्याय के विरुद्ध अपराध या किसी न्यायालय में वास्तव में उपयोग में लाए गए दस्तावेजों से संबंधित अपराध की कोटि में आता है, वहां प्राइवेट अभियोजन पूर्णत: वर्जित है और केवल वह न्यायालय, जिसके संबंध में अपराध किया गया था, कार्यवाहियां आरंभ कर सकेगा । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195

के उपबंध आज्ञापक हैं और किसी न्यायालय को इस धारा में उल्लिखित अपराधों में से किसी का तब तक संज्ञान करने की अधिकारिता नहीं है, जब तक कि इस धारा में यथा अपेक्षित लिखित में परिवाद प्रस्तुत न किया गया हो । यह स्थिर विधि है कि गलत या मिथ्या कथन करने के प्रत्येक मामले में न्यायालय अभियोजन आरंभ करने का आदेश देने के लिए आबद्ध नहीं है, अपितु अभियोजन आरंभ करने का आदेश देने के लिए न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग केवल न्याय प्रशासन के बृहत्तर हित में करेगा (एवमेव) ।

6. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 में वह प्रक्रिया विहित की गई है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 के अधीन कोई परिवाद कैसे प्रस्तुत किया जा सकेगा । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 के अधीन न्यायालय, जिसके समक्ष अपराध किया गया था, अपराधी के अभियोजन के लिए शिकायत प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र है, जबकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 में वह प्रक्रिया विहित है कि वह परिवाद कैसे प्रस्तुत किया जा सकेगा । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 के अधीन आने वाले उपबंध आज्ञापक है और कोई न्यायालय उसमें (एवमेव) निर्दिष्ट अपराधों का संज्ञान नहीं कर सकता है । न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 के अधीन ही ऐसे अपराधों की बाबत कार्यवाही करने की अधिकारिता है और किसी सिविल, राजस्व या दांडिक न्यायालय द्वारा अपनी अंतर्निहित अधिकारिता के अधीन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 के उपबंधों के बाहर कोई परिवाद फाइल नहीं किया जा सकता है ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

20. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(ख) के अधीन खंड अर्थात् उपधारा 195(1)(ख)(i) और उपधारा 195(1)(ख)(ii) अलग-अलग अपराधों के संबंध में है । यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340, धारा 195(1)(ख) के अधीन किए गए अपराधों के लिए एक व्यापक उपबंध है, तो भी यह दंड प्रक्रिया संहिता

की धारा 195(1)(ख) के खंड (i) और (ii) पर अलग-अलग और अनन्य रूप से लागू होती है ।

21. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए **सच्चिदानंद सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह न्यायालय इस प्रश्न पर विचार कर रहा था कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(ख)(ii) में अंतर्विष्ट वर्जन उस मामले में लागू होता है जहां दस्तावेज की कूटरचना उस दस्तावेज को न्यायालय में प्रस्तुत करने से पूर्व की गई हो । यह अभिनिर्धारित किया गया :–

> "6. खंड का अध्ययन, उसमें उल्लिखित वर्जन लागू करने के लिए दो मुख्य आधार तत्व प्रकट करता है । प्रथम यह है कि यह अभिकथन होना चाहिए कि कोई अपराध (यह या तो भा.दं.सं. की धारा 463 में वर्णित कोई अपराध या भा.दं.सं. की धारा 471, 475, 476 के अधीन दंडनीय कोई भी अन्य अपराध होना चाहिए) किया गया हो । दूसरा यह है कि ऐसा अपराध किसी न्यायालय की किसी कार्यवाही में साक्ष्य में पेश किए गए या दिए गए किसी दस्तावेज की बाबत किया गया हो । हमारे समक्ष यह विवाद नहीं है कि यदि कूटरचना तब की गई, जब दस्तावेज किसी न्यायालय की अभिरक्षा में था, तो अभियोजन केवल न्यायालय द्वारा किए गए किसी परिवाद के साथ ही आरंभ किया जा सकता है । यह विवाद भी नहीं है कि यदि कूटरचित दस्तावेज ऐसी हैं, जो किसी न्यायालय में प्रस्तुत नहीं की गई हैं, तो अभियोजन किसी व्यक्ति के अनुरोध पर होगा । यदि ऐसा है, तो क्या किसी न्यायालय में इसकी प्रस्तुति से स्थिति बदल जाएगी ?
>
> * * * *
>
> 23. उपर्युक्त विवेचन का निष्कर्ष यह है कि संहिता की धारा 195(1)(ख)(ii) में अंतर्विष्ट वर्जन उस मामले को लागू नहीं होता है, जहां दस्तावेज की कूटरचना किसी न्यायालय में उस दस्तावेज को पेश किए जाने के पूर्व की गई है । तद्नुसार, हम इस अपील को खारिज करते हैं ।"

22. **सच्चिदानंद सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने वर्तमान मामले से भिन्न दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(ख)(ii) पर विचार किया था, जो कि धारा के पूर्ववर्ती खंड के अंतर्गत आता है । अपराधों के प्रवर्ग जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(ख)(i) के अंतर्गत आते हैं, उसमें मिथ्या साक्ष्य देने के अपराध और लोक न्याय के विरुद्ध अपराधों के प्रतिनिर्देश है जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(ख)(ii) के अधीन आने वाले अपराधों से सुस्पष्टतया भिन्न हैं, जिसमें यह विवाद उद्भूत हो सकता है कि क्या किसी दस्तावेज की कूटरचना करने का अपराध न्यायालय के बाहर किया गया था या जब वह न्यायालय की अभिरक्षा में था । इसलिए, यह विनिश्चय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है ।

23. प्रस्तुत मामला पूरी तरह से उन मामलों के प्रवर्ग में आता है जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(ख)(i) के अंतर्गत आते हैं क्योंकि यह अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अधीन दंडनीय है । अत:, मजिस्ट्रेट ने प्राइवेट परिवाद के आधार पर अपराध का संज्ञान लेकर गलती की है । हमारे मत में, उच्च न्यायालय ने ठीक ही मजिस्ट्रेट के आदेश को अपास्त किया है । तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हम उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित खर्चे को अपास्त करना उचित समझते हैं ।

24. तद्नुसार, इस अपील का निपटारा किया जाता है ।

अपील का निपटारा किया गया ।

जस.